IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'पूर्वमध्यकाल में कृषकों का जीवन स्तर'

शैलेन्द्र सिंह यादव (शोधार्थी)

ने० ग्रा० भा० वि० वि० प्रयागराज

पूर्वमध्यकाल में कृषकों की स्थिति अच्छी नहीं थी। यह सामंतवाद का दौर था सामंतवाद व्यवस्था कृषकों के लिए बहुत अनुकल नहीं मानी जाती थी। कृषि के विकास के लिए कुछ शक्तिशाली राजवंशो जैसे–चहमान, गहड़वाल, चोल, चालुक्य वंश के प्रयास सराहनीय थे। किन्तु पर्याप्त नहीं थे। राज्य की आय का प्रमुख स्रोत तथा जीविका का प्रमुख स्रोत खाद्यान्न ही था। दुर्भागय यह था कि कुछ कारणों से कृषकों को संरक्षण कभी–कभी नहीं मिल पाता था जिसका प्रभाव कृषि उत्पादन प्रणाली पर पड़ता था। राजपूत राजाओं का आपस में संघर्ष तथा उत्तर–पश्चिम में विदेशी आक्रमण के दौर मे पंजाब जैसे समृद्ध प्रांत की कृषि प्रायः क्षतिग्रस्त होती रहती थी। युद्धों, अकालों तथा प्रशासकीय शोषण से खेती और कृषक प्रभावित होते थे।

पूर्वमध्यकाल मे कृषक समस्याओं से जूझता रहा यद्यपि आर्थिक सुधारों से उसका शोषण कम हो गया था। जब भी कोई विपरीत परिस्थिति युद्ध, अकाल अथवा अन्य कारणों से होती थी तो कृषक अपने को असहाय महसूस करता था। यही कारण है कि कृषि के क्षेत्र में अधिक विकास नहीं हो पाया, यद्यपि संभावनाएं थी। पूर्वमध्यकाल के शासको का राजनीतिक, प्रशासनिक, साम्राज्यवादी और सांस्कृतिक विचार जितना स्पष्ट था उतना स्पष्ट आर्थिक विचार नहीं था। खजाने का धन उन कृषकों से भरता था किन्तु कृषि की विकास के लिए उसका इस्तेमाल बहुत कम होता था। युद्ध और अकाल के दौरान कृषि की बर्वादी होती थी जिसमें कृषि और कृषक दोनों बर्वाद हो जाते थे। कभी–कभी सामंतो एवं जागीरदारों के शोषण और अत्याचार के कारण कृषक कृषि छोड़कर पलायन कर जाने को मजबूर होते थे।

उच्चवर्णो, भूस्वामियों और सम्पन्न लोगों का जीवन खुशहाल था, उनका खानपान, रहनसहन, वस्त्राभूषण उच्चकोटि में होते थे। किन्तु ग्राम की अधिकांश आबादी–कृषक और श्रमिक साधारण सूतीवस्त्र पहनते थे।[1] उनकी आवश्यकताएं बहुत कम थी, दो समय का भोजन और अपनी नग्नता छुपाने के लिए एक या दो कपड़े तथा सिर छुपाने के लिए झोपड़ी। तत्कालीन साहित्य से पता चलता है कि कभी–कभी किसी को वह भी नसीब नहीं होता था। एक गृहस्थ का वर्णन है कि किस प्रकार एक निर्धन पत्नी अपनी क्षीण काया और फटे हुए वस्त्रों में भूख से व्याकुल बच्चों के शोर से व्यग्र होकर प्रार्थना कर रही है कि एक मन अन्न उनके परिवार के सौ दिन के लिए काफी होगा।[2] इसी प्रकार एक अन्य कविता में कवि कह रहा है कि जब भी मैं अपने बच्चों को भूख से व्याकुल देखता हूँ या घर का पुराना टूटा रिसता हुआ जलपात्र देखता हूँ तब भी उतना दुखी नहीं होता हूँ जितना तब दुखी होता हूँ जब यह देखता हूँ कि मेरी पत्नी पड़ोसन स्त्री से सिलने के लिए सुई देने की प्रार्थना कर रही है और वह स्त्री क्रोधित हो उठती है।[3] हो सकता है इन कविताओं में कुछ अतिश्योक्ति रही हो किन्तु लोगों की विपन्नता के वर्णन में कुछ न कुछ सच्चाई भी होगी।

कुछ सम्पन्न कृषकों के भी उदाहरण मिलते हैं। एक सम्पन्न कृषक ईश्वर से प्रार्थना करता था कि स्थानीय अधिकारी लालची न हो, उसका घर पशुओं से भरा रहे, कृषि फलवती हो और पत्नी अभ्यागतों का सत्कार करने वाली हो। [4] लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि शरण ने कृषक पत्नियों को बाजार से खरीददारी कर लौट कर आती हुयी, प्रसन्नमुद्रा में चित्रित किया है वे शाम को शीघ्र घर लौटना चाहती थी क्योंकि उनके पतियों का खेत से आने का समय हो गया था। यशस्तिलकचम्पू [5] में मक्के के खेत में रास्ता बनाती हुयी आने वाली कृषक पत्नियां बहुमूल्य आभूषण धारण किये हुये है उनमें से कुछ इतनी कोमल है कि सर्दी के मौसम ने उनके कोमल पैरों को नुकसान पहुंचाया है।

कृषकों के जीवन में धार्मिक अनुष्ठानों का बहुत महत्व था, इन अनुष्ठानों के माध्यम से ग्रामीण कृषकों में कृषि के प्रति समर्पण, उत्साह और आपसी सद्भाव का संचार होता था। प्रथम बार हल चलाने से पूर्व कृषक स्नान के वाद श्वेत वस्त्र धारण कर पृथ्वी, नक्षत्रों, प्रथु और प्रजापति की पूजा करते थे। इस अवसर पर यथा सामर्थ्य अग्नि की परिक्रमा और ब्राह्मणों को दान देने की भी परम्परा थी। हल की फाल को शहद और घी से स्पर्श कराके किसान खेत में बायीं ओर हल चलाता था। [6] वर्षा समय से व पर्याप्त हो इसके लिए कृषक इन्द्रदेव को नैवेद्य और घी का दीपक भेंट करना आवश्यक समझते थे। उत्तम फसल की प्राप्ति हेतु कृषक पृथ्वी से प्रार्थना करता था।[7]

बीज वपन का प्रारम्भ कृषक किसी मुहूर्त में पूरब की ओर मुह करके इन्द्र का ध्यान करने के पश्चातु करते थे तथा जब सभी खेतों में बीज बोये जा चुके होते थे तब एक भव्य भोज का आयोजन होता था। [8] एक अन्य महत्वपूर्ण अनुष्ठान गर्भ संक्रान्ति थी जो कार्तिक मास के प्रथम दिन आयोजित होती थी, धान के पौधों से पुष्ट दाने निकले इसलिए इसका आयोजन होता था। [9] फसल के पकने से कुछ समय पहले भी किसान एक प्रीतिभोज का आयोजन करते थे।

पौष मास में ग्राम के सभी कृषक समीप के किसी खेत में इकट्ठा होकर नृत्य और संगीत का आनन्द लेते थे। सांयकाल सुर्य पूजन एवं दर्शन के पश्चात् घर लौटकर रात्रिकालीन भोजन नहीं किया जाता था। [10] मुष्ठिग्रहण का आयोजन अग्रहण मास में किया जाता था जिसमें कृषक वर्ग धान की पूजा चन्दन, फूल आदि से किया करते थे तथा फसल काटने से पहले ढाई मुट्ठी फसल काटकर घर पर मुख्य कक्ष में सात कदम चलने के बाद पूरब की ओर रखते थे।

किसान दैनिक जीवन में घटने वाली कुछ घटनाओं के बारे में अन्धविश्वासी थे तथा वे इन घटनाओं को भविष्य में घटने वाली घटना का पूर्व संकेत मानते थे। जैसे– यदि खेत जोतते समय बैल गिर जाये तो किसान की मृत्यु ज्वर अथवा पेचिश से हो जाती थी। यदि खेत जोतते समय बैल भागने लगे तो फसल नष्ट हो सकती थी और किसान को शारीरिक कष्ट का सामना करना पड़ सकता था। लेकिन यदि खेत जोतना शुरू करते समय बैल डकारें और अपनी नाक चाटे तो फसल चार गुनी होने की संभावना होती थी। यदि खेत जोतते समय बैल गोबर या मूत्र करे तो अन्न धान्य बढ़ने की संभावाना होती थी। इसी प्रकार की कुछ अन्य मान्यताएँ थी जिनका निर्वाह कृषक परिवार करता था जैसे– इतवार, मंगलवार, और शनिवार को गाय का गोबर किसी को नहीं दिया जाता था। इसी प्रकार पूर्णतया श्वेत बैल जोतने के लिए अच्छा माना जाता था आदि।

अनेक स्थानों पर साधारण कृषकों की गरीबी और अभावों का चित्रण मिलता है। अवदान कल्पलता [11] कृषकों के गरीबी और विपन्नता का जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है जो अपने खेतों में फावड़े और हल के साथ कड़ी मेहनत करता है, भूख और प्यास के अधीन उसका पूरा शरीर धूल मिट्टी से सना है तथा हाथ पैर फटे हुये हैं। कहीं–कहीं ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब अच्छे घरों के लड़के भी गरीबी के कारण खेतों पर मजदूरों की तरह कार्य करने को बाध्य हो जाते थे। [12]

प्रबन्धचिन्तामणि में एक गृहस्थ जिसके पास अपने चार बैल और दो गायें तथा मृदुभाषिणी पत्नी हो वह सौभाग्यशाली व्यक्ति माना गया है।

किसानों पर लगाये जाने वाले कष्टकारी करों का उल्लेख मिलता है। इन करों की वजह से कृषक की स्थिति और दयनीय हो जाती थी। राजतरंगिणी [13] से पता चलता है कि राजा जयापीड ने लालचवश तीन वर्षो की पूरी फसल ले लिया था जिसमें किसानों का हिस्सा भी शामिल था। क्षेमेंन्द्र [14] की नर्ममाला एक नियोगी नामक राजस्व अधिकारी का उल्लेख करती है जो निर्दयतापूर्वक कृषकों से कर वसूलता था। कथासरित्सागर [15] और बृहत्कथामंजरी [16] सूचित करती है कि ब्राह्मणों और छोटे सामन्तों के राज्य में किसानों की स्थिति कर वसूलने के कारण दयनीय हो गयी थी। किसानों से विष्टि के रूप में लिये जाने वाले कर के विधान ने भी कृषकों पर दबाव की सिथति पैदा कर दी थी। 'यशस्तिलकचम्पू' [17] में राजा के मंत्री के खिलाफ एक आरोप लगाया है कि वह बुवाई के समय विष्टि की मांग कर रहा है अर्थात बुवाई के मौसम के अलावा वह वैधानिक रूप से विष्टि की मांग कर सकता था। अत्यधिक कराधान के अतिरिक्त दुर्भिक्ष, शत्रुओं का आक्रमण, शासकों के युद्ध अभियान आदि अनेक कारण थे जिन्होंने किसानों की गरीबी को बढ़ाने में भूमिका निभायी। त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित [18] दुर्भिक्ष को प्राकृतिक विनाश कहती है। अपराजितपृच्छा के अनुसार दुर्भिक्ष प्रभावित क्षेत्रों में धर्म का पतन होता है तथा राजा व प्रजा का नाश हो जाता है। राजतरंगिणी [19] में दुर्भिक्षों का वर्णन है। पहला 917–18 ई० में पार्थ के शासन काल में, दूसरा हर्ष (कश्मीर के शासक) के शासन काल में 1099–1100 ई० में। फरिश्ता 1033 में भारत में पड़े दुर्भिक्ष के बारे में बताता है जिसके परिणामस्वरूप बहुत से शहर पूर्ण रूप से जनसंख्या विहीन हो गये थे। वृहन्नारदीय पुराण [20] कहता है कभी–कभी दुर्भिक्ष जनता को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने को मजबूर कर देते थे।

अतिवृष्टि या अनावृष्टि दुर्भिक्ष का कारण बन जाता था जिसका प्रभाव फसलों का नष्ट होना और फिर अनाज की कीमतों में बढ़ोत्तरी। [21] अस्थाई रूप से पलायित कृषक जब वापस आते थे तो भू–स्वामित्व और सीमा सम्बन्धी विवाद उत्पन्न हो जाता थे। [22] इस प्रकार की स्थिति में साधारणतया भूमि बिना जुती रह जाती थी तथा राजस्व की भी हानी होती थी। अकाल के समय बड़ी संख्या में पशु मारे जाते थें और लोग भूख से मरने लगते थे कभी–कभी वे खुद को तथा अपने बच्चों को भी बेचने के लिए मजबूर हो जाते थे। [23]

शासकों का विलासितापूर्ण अपव्यय भी कृषकों की आर्थिक समृद्धि के नाश का कारण बनता था। [24] लगातार होने वाले सामन्तीय युद्ध इस काल का साधारण लक्षण बन गये थे। मानसोल्लास [25] के अनुसार आक्रमणकारी राजा सर्म्पूण अनाज को नष्ट कर राज्य को दुर्भिक्ष के मुँह में ढकेल सकता था। राजतरंगिणी में हम कई उदाहरण पाते है जब विद्रोहियों नें शहरों और गाँवों को जला दिया तथा नष्ट कर दिया। सुल्तान महमूद के सफल आक्रमण ने भी उत्तर भारत की कृषि को भारी नुकसान पहुँचाया था। [26]

इस प्रकार देखा जाए तो इस काल में कृषको की स्थिति अच्छी नहीं थी। कृषक वर्ग को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता था। इसमें प्राकृतिक और मानवीय दोनों प्रकार की समस्याएँ थी। प्राकृतिक रूप से देखा जाए तो बाढ़, सूखा से उनकी फसलें नष्ट हो जाती थी। मानवीय रूप से देखा जाए तो युद्ध के दौरान उनकी फसले नष्ट हो जाती थी या शत्रु सेना द्वारा फसलों को जला दिया जाता था। सामंतों एवं जागीरदारों के शोषण एवं अत्याचार के कारण कृषक वर्ग परेशान रहता था। इस काल के साहित्य लेखन में भी कृषकों की गरीबी और अभावों का चित्रण मिलता है। अवदानकल्पलता कृषकों की गरीबी और विपन्नता का जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करती है। कृषकों की उन्नति के लिए कुछ राजवंशों जैसे– चहमान, गहड़वाल, चोल, चालुक्य वंश के प्रयास सराहनीय थे, किन्तु वे पर्याप्त नहीं थे।

सन्दर्भ:

1. चर्यापद पद सं० 30, सदुक्तिकर्णामृत, 30.17.2 उद्धृत डॉ० शोभा मिश्रा, 'गुप्तोत्तर काल में कृषकों की स्थिति' पृ० 75
2. सदुक्तिकर्णामृत, पृ० 130, v 49.4 उद्धृत डॉ० शोभा मिश्रा, 'गुप्तोत्तर काल में कृषकों की स्थिति' पृ० 75
3. सदुक्तिकर्णामृत, पृ० 130, v 49.4 उद्धृत डॉ० शोभा मिश्रा, 'गुप्तोत्तर काल में कृषकों की स्थिति' पृ० 75
4. सदुक्तिकर्णामृत, पृ० 303, v 38.2 उद्धृत डॉ० शोभा मिश्रा, 'गुप्तोत्तर काल में कृषकों की स्थिति' पृ० 76
5. यशस्तिलकचम्पू, । पृ० 10
6. कृषिपाराशर, श्लोक 130–32
7. कृषिपाराशर, श्लोक 135–140
8. कृषिपाराशर, श्लोक 178–181
9. कृषिपाराशर, श्लोक 130–32
10. कृषिपाराशर, श्लोक 220–233
11. अवदानकल्पलता, XXIV.94-96
12. सुभाषित रत्नकोश, V. 5 पृ० 1306, 1307, 1310, 1311, 1312, 1316, 1317 उद्धृत लल्लनजी गोपाल, 'इकानामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया' पृ० 244
13. राजतरंगिणी, IV. 628
14. उद्धृत यादव बी० एन० एस० 'सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया' पृ०, 238
15. कथासारित्सागर, III .18
16. वृहत्कथामंजरी, III. 200-201
17. यशस्तिलकचम्पू, III.172, उद्धृत जी०के०राय, आई०एच०आर भाग– III पृ० 34
18. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित, I. पृ० 331
19. राजतरंगिणी, V 5, 270-78, VII 1206
20. वृहन्नारदीय पुराण, पृ० 38,87 उद्धत–यादव बी० एन० एस० 'सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया' पृ०, 258
21. ए०आर०आई० 1907 भाग–2, खण्ड–53
22. ए०आर०आई० 1908 भाग–2, खण्ड–73
23. अप्पादोराई, 'इकानामिक कन्डीशन ऑफ साउथ इण्डिया' भाग–1 पृ० 749
24. मजूमदार बी०पी० 'द सोशियो इकानामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया' पृ० 245
25. मानसोल्लास, I पृ० 122
26. मजूमदार बी०पी० 'द सोशियो इकानामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया' पृ० 170–71